प्रतीकों का महत्व एवं राग ध्यान की अवधारणा

मीनाक्षी
पी.एच.–डी. शोध–छात्रा, संगीत तंत्रीवाद्य विभाग, इन्दिरा संगीत कला विश्वविद्यालय, खैरागढ़

किसी भी वस्तु की आकृति की कल्पना उसके आकार–प्रकार, स्वरूप और प्रकृति पर निर्भर करती है। इसी प्रकार किसी राग की आकृति भी उसके स्वरूप, विस्तार और प्रकृति पर निर्भर है। राग का स्वरूप उसके आरोह–अवरोह, प्रकृति, मन्द्र, मध्य तार स्थान, ग्रह, अंश (वादी–संवादी स्वर) और उसमें निहत विशेष तत्वों यथा गमक, मींड, तान आलाप आदि अलंकरणों से युक्त प्रस्तुतिकरण के आधार पर ही स्पष्ट होता है। यद्यपि राग अमूर्त है इसी प्रकार उसकी आकृति भी अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करने की प्रक्रिया है। राग के स्वरूप को स्पष्टता प्रदान करने से ही उसके मूर्त रूप को आकार देने में सफलता मिल सकती है।

राग–रूप को स्पष्टता प्रदान करने में सर्वप्रथम पं. सोमनाथ ने प्रयास किया। उन्होंने राग रूप को द्विपक्षीय वितरण प्रस्तुत किया। एक राग का ध्वान्यात्मक स्वरूप और दूसरा देवता–रूप राग के ध्वन्यात्मक रूप को स्वर, आलाप, तान अलंकार आदि वर्गो से सुषोभित कर प्रस्तुतीकरण द्वारा स्पष्टता प्रदान की जाती है परन्तु उसके देवता रूप को पद्य–रूप में उसमें निहत गुणों के आधार पर एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाता है। प्रायः ऐसी आकृति की मानवीय रूप के अनुसार ही कल्पना की जाती है। सम्भवतः मूर्ति पूजा से ही रागों के मूर्त रूप को आकृति प्रदान करने का उद्‌भव हुआ हो।

भारतीय दर्शन में प्रत्येक वस्तु को मूर्त और अमूर्त रूप में प्रस्तुत किया है। देवी–देवता यद्यपि अमूर्त है, परन्तु उसकी सत्ता और प्रभुता के आधार पर तथा उनकी शक्तियों और आकार को साकार रूप प्रदान करने हेतु उनको भाषा तथा आकृतियों के मध्यम से मूर्त रूप प्रदान किया गया। देवी–देवताओं की प्रतिमा–लक्षण का विकास यहीं से हुआ। प्रतिमा लक्षणों में प्रतीकों का प्रयोग आवश्यमभावी था, अतः विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से देवी–देवताओं के स्वरूप की कल्पना की गई। विशिष्ट देवी अथवा देवता की भिन्न–भिन्न शक्तियां है। इन्हीं शक्तियों के आधार पर प्रतीक प्रयुक्त किए गए। गुणों के अन्तर्गत सात्विक, रजस और तमस के आधार पर

भी देवी–देवताओं के स्वरूप की कल्पना की गई। भारतीय धर्म एवं दर्शन में प्रतीकों के महत्व को आज भी आधार माना गया है।

देवी–देवताओं के स्वरूप की कल्पना का विकास

भारत की सनातन मान्यताओं के अनुसार सम्पूर्ण विश्व के त्रिदेव ब्रह्म, विष्णु और शिव सृष्टि के उत्पाद, पालक और संहारकर्ता के रूप में पूज्य हैं जब इन त्रिदेवों के स्वरूप, शक्तियों और गुणों की स्थापना हो गई तब इनकी प्रतिमा अथवा चित्रांकित स्वरूप में आकार प्रदापन करने का कार्य प्रारंभ हुआ।

प्रतिमाओं का निर्माण तथा मूर्तिपूजा का आरंभ हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो के समय में प्रारंभ हो चुका था। इसका प्रमाण खुदाई में मिली ब्रह्माण्ड की माता (मां दुर्गा) आदि शक्ति की मूर्तियों से प्राप्त होता है। प्रतिमाओं को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने की प्रक्रिया में कालान्तर विभिन्न चिंतकों, कलाकारों और ऋषियों का योगदान है, जिन्होंने इन शक्तियों के प्रतीकों और गुणों को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। प्रतिमाओं और चित्रों में विभिन्न देवी–देवताओं का आकृतियों के अंकन के स्वरूप निर्धारन में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके प्रयोग के अभाव में इनका चित्रांकन अथवा मूर्ति निर्माण असम्भव प्रतीत होता है। अतः प्रतीकात्मकता का महत्वपूर्ण स्थान निश्चित है यह कहना अनुचित नहीं होगा।

प्रतीक

भारतीय कलाओं में प्रतीक मान्यताओं के आधार पर प्रयुक्त किये गए है किसी अदृष्ट वस्तु के प्रतिविधान के रूप में किसी दृष्ट वस्तु का प्रयोग प्रतीक विधान कहलाता है। इस भौतिक जगत में अमूर्त, अदृश्य अश्रव्य एवं अप्रस्तुत को जब मूर्तिमान, श्रव्यमान, एवं रूपवान बनाजा जाता है तो प्रतीक का सहारा लेकर उसे प्रस्तुत किया जाता है। जीवन में इनकी संज्ञा मनुष्य के संवेगों का ही परिणाम है अर्मूत चिन्तन धर्म आदि में इनकी संख्या के स्रोत असंख्या है साधारण रूप में कहा जा सकता है कि प्रतीकों के माध्यम से किसी विषय का प्रतिविधान करना प्रतीक विधान है।

वैदिक युग में प्रतीकों का प्रयोग बहुतायत से होता था, ऐसे प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। भारत एक आध्यात्मिक भावना से पूर्ण देश है। अतः भारतीय कलाएं भी आध्यात्म के भावों को प्रतिबिम्बित करती है। इन भावनाओं को ही प्रतीकों के माध्यम

से चित्रांकित और प्रमिताओं द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की गई। देश का प्रतीक उसका ध्वज धर्म के प्रतीक मंदिर, मस्ज़िद, चर्च, गुरूद्वारा तथा चर्चा और प्रवृति का प्रतीक उसकी मान्यताएं होती है। बड़े–बड़े कामों में प्रतीक का प्रयोग न हो तो उसका पूर्ण होना असम्भव हो जाए। लिपि, शब्द रंग, रेखाएं, भंगिमा आदि सभी इसके अंतर्गत आ जाते है। कलाकारों ने समस्त ब्रह्माण्ड को प्रतीक के रूप में ही मानकर उसकी परिकल्पनाएं प्रस्तुत की हैं।

प्रकृति के विभिन्न गुणों को भी प्रतीकों और उनकी शक्तियों को मूर्त रूप से चित्रित अथवा मूर्तिकला द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वायु, जल, वन, पशु, पक्षी, पेड़ पौधे आदि अपने विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते है। इनको मूर्त रूप प्रदान करने मे इनके गुणों के आधार पर विशेष प्रतीकों का ही आश्रय लेना पड़ता है। त्रिदेवों के मूर्त रूप चित्रण में ऐसे प्रतीकों को ही माध्यम बनाया गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के स्वरूपों की कल्पना वैदिक काल में हो चुकी थी और पुराणों तथा अन्य महाकाव्यों में उसका विकास हुआ।

ब्रह्मा को मानव रूप में चित्रित किया जाता है। मानव रूप में ब्रह्म हंस पर आसीन है। उनके हाथ में कमण्डल है। समुद्र में उनके पास कमल के फूल खिले हुए हैं इन प्रतीकों का प्रयोग ब्रह्मशक्ति को विश्लेषित करता है अर्थात् जल जीवन का स्रोत है। कमल फूल उत्पत्ति कारक है। हंस मन की चेतना का प्रतीक है। मन और मस्तिष्क ही सृजन शक्ति है। कमण्डल में जल निराकार शक्ति का प्रतीक है। ब्रह्मा के चार मुख स्वस्तिक की चार भुजाओं के समान है जो कि ब्रह्माण्ड की आकृति का प्रतीक है।

ब्रह्मा ज्ञान के देवता है चार वेद ज्ञान के स्रोत है। ब्रह्मा की चार भुजाएं चार वेदों में निहित ज्ञान के प्रतीक है। ब्रह्मा के लिए ऐसे प्रतीकों का प्रयोग उपयुक्त प्रतीत होता है। अतः कलाकारों ने इस प्रतीक को अपनाया। विष्णु, ब्रह्माण्ड के पालक देवता है। विष्णु का वाहन गरूड़ है, उनके एक हाथ में चक्र है जो सृष्टि में निहित चक्र के समान हर समय घूमता रहता है। उनकी शैया शेशनाग की है जो शून्य का प्रतीक है, शून्य का महत्वपूर्ण स्थान है। शून्य अनन्तता का प्रतीक हैं सृष्टि अनन्त है।

विष्णु की चार भुजाएं सृष्टि में व्याप्त चार प्रकार की सृजन शक्ति है। शिव के पांच मुख पांच तत्वों में प्रतीक है। उनके मस्तक पर विराजमान अर्धचन्द्र, मान तथा अमरत्व का प्रतीक है। उनके गले में लिपटे हुए सर्प अंधकार और असुरों को दर्शाते है। उनका वाहन बैल काम का प्रतीक है। काम को शिव ही शान्त करते हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के प्रतीकों का प्रयोग कलाओं और साहित्य में प्रचुरता से हुआ है। इसलिए ये प्रतीक लोक में लोकप्रिय हो गए और मानव उन्हें अपनी दैनिक प्रार्थना में प्रयुक्त करने लगा। जीवन के हर क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण स्थान बन गया। प्रत्येक अनुष्ठान तथा क्रियाकलाप में संगीत एक अभिन्न अंग है। इन सभी कार्यो में संगीत द्वारा कर्म सम्पन्न होने लगे। प्रार्थना में सरस्वती तथा गणश्ष की आराधना में नाटक, संगीत और गायन का प्रस्तुतीकरण किया जाने लगा। सरस्वती कला और ज्ञान की देवी तथा गणेश बृद्धि तथा विद्या के देवता है। अतः उनकी आराधना सर्वप्रथम की जाती है। प्रतीकों का अन्त सृष्टि के अन्त में ही होगा इनका इतिहास आदिमानव से आज तक का इतिहास है। जन–समूह इन प्रतीकों के महत्व को जल्दी ही ग्रहण करता है।

देवी–देवताओं के आराधना में जो काव्य रचा जाता है उसमें देवी–देवता के आराध्य स्वरूप का वर्णन होता था अतः उसी स्वरूप की आकृति को आधार मान कर देवी–देवता की आराधना का प्रचार हुआ। इस अवधारणा से राग–गायन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कविता अथवा पद्य जिस विशेष देवी–देवता का वर्णन हो उसी के अनुसार आराधना की जाती है उसके अनुरूप पद्य के रस भाव के अनुसार राग का चयन होता था। इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण में राग रूप स्पष्ट होता था। अतः राग का देवता रूप स्थापित हो जाता था।

संगीत दर्पण में दामोदार पण्डित देवी–देवताओं से संगीत की उपत्ति कही हैं, जो इस प्रकार से है :–

"शिव शक्तिसमायोगाद्राबाणां सम्भवों भवेत्।
पन्चास्यात् पन्च रागाः स्युः षष्ठस्तु गिरिजामुखात्।।
सघोक्रातु श्रीरागों वामदेवाद्वसन्तकः।
अघोराद् भैरवोमूत्तत्पुरूशात पन्चमोभवत्।।
ईषानाख्यान्मेघरागो नाटयारम्भे शिवादभूत।

गिरिजाया मुखाल्लास्ये नट्टनानायणेभवत्।।

भावार्थ :– शिव और शक्ति के योग से राग की सृष्टि होती है। महादेव जी के पांच मुखों से पांच राग तथा छठा राग पार्वती जी के मुख से निकला। महादेव जी ने नाट्य (नर्तन) शुरू किया तब उनके सद्योवक्त्र नामक मुख से श्री राग निकला। वामदेव मुख से वंसत राग निकला। अधोर मुख से भैरव, तत्पुरूष मुख में पंचम और ईशान मुख से मेघ राग तथा नृत्य के प्रसंग में पार्वती जी के मुख से नट्टनारायण राग उत्पन्न हुआ।

रागों के देवता रूप का प्रादुर्भाव : दैनिक कार्य कलापों तथा नित्य प्रार्थना आदि कर्मों में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। देवी–देवताओं की प्रार्थना में जो पद्य गाए जाते थे, उनमें प्रयुक्त राग उस पद्य में निहित देवता के स्वरूप के अनुसार रागों के देवता प्रतिष्ठित हो गए। उदाहरण स्वरूप तुलसीदास द्वारा रचितरामचरित मानस के पद्यों के गायन में रागों के देवता राम जो विष्णु के अवतार हैं, राग का देवता–रूप विष्णु स्थापित हुआ। इसी प्रकार रागों के देवता–रूप में विभिन्न देवी–देवता के स्वरूप प्रचार में आये। सर्वप्रथम राग के देवताओं का संकेत आचार्य शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर में ही उपलब्ध होता है। आचार्य कोहल एवं आचार्य शारंगदेव ने प्रत्येक स्वरों के देवताओं अर्थात रागों के ध्यान करने के लिए विशिष्ट रागों के स्वरूपों का उल्लेख किया है। राग–विवेकाध्याय में राग–गितियों के विवेचन में रागों के देवताओं को निम्न प्रकार से बताया है।

राग का नाम	**राग का देवता**
राग शुद्धकौशिक	पृथ्वी (भौम–बल्लम)
राग मालव कौशिक	केशव
राग हिंड़ोल	मकरध्वज (कामदेव)

इसी प्रकार देवी–देवताओं में विष्णु तथा पार्वती का ध्यान इस प्रकार से है–

संगीत राज में विष्णु जी का ध्यान इस प्रकार से है –

नीलवर्णष्चतुर्बार्नाराण इवापरः
षंखचक्रगदावीरणाकरों गुरूडवाहनः।
मन्यते कैश्चिदेवामच मंतग मतस्थितै।

अर्थात – श्याम वर्ण, चार भुजाधारी, जिनके हाथ में शंख, चक्र, गदा और वीणा धारण की हुई है, जिनका वाहन गरूड़ है जिन्हें देवताओं के देव माना जाता है, ऐसे भगवान विष्णु सभी के उपास्य देव हैं।

बृहद्देशी में मंतगमुनि ने पार्वती जी का ध्यान इस प्रकार से है

बन्धुकामा त्रिनेत्राममृतकरकलाशिखरां।
रक्तवस्त्रा पीनोतुङ्ग पवृततनभरनमिता।
यौवनारम्भरूढ़ाम सर्वालङ कारभाषा सरसिजनिलंय बीजसंक्रान्तिमूर्ति।
छेवीपाशाड़ कुषाढ़यामभयवकरां विष्योनिंनमाभि।

अर्थात– बन्धुक पुश्प की तरह कान्ति से युक्त, त्रि–नयना, चन्द्रमा की कला (के समान) रूपी मुकुट धारण करने वाली, रक्ताम्बरा कठोर और उत्तुंग (ऊपर उठे हुए) तथा विस्तृत स्तनों के भार से किंचित (झुकी हुई) नम यौवन की प्रारम्भावस्था में दृश्यमान, सभी प्रकार के अलंकारों से भूषित, कमलवासिनी (सम्पूर्ण) सृष्टि के बीज रूप में संक्रान्त (व्याप्त) हुई आकृतिवाली, पाशा और अंकुश को धारण करने वाली तथा हाथों में परम अभय प्रदान करती हुई, विश्व की जन्मदात्री को मैं नमन करता हूं। यह श्लोक देशी राग का आरंभ करने पर मंगलाचरण के रूप में मंतग ने पार्वती जी की स्तुति के रूप में दिया है।

रागों के इस देवता–रूप को ही राग–ध्यान की संज्ञा से अभिहित किया गया है तथा इन रागध्यानों के सहारे राग के देवमय रूपों को एक निश्चित स्वरूप दिया गाया। रागों के भावाधारित अमूर्त व्यक्तिगत को मूर्त करने के लिए संगीत के कुछ सम्प्रदायो ने रागों के ध्यानों की रचना की। ध्यान राग की वह पद्धति हैं, जिसमें संगीतज्ञ राग प्रस्तुत करने से पूर्व ही उसके स्वरूप का आभास देकर स्वरों के उतार–चढ़ाव में ऐसा अद्भुत स्वर संचरण पैदा करता है कि राग हृदय को आहलादित कर सके। इस प्रकार ध्यान का महत्व रूप परिचालक होता है जो कि लक्ष्य की प्राप्ति में राग को स्पष्ट करता है। इन ध्यान पद्धति से संगीतज्ञों को अभीष्ट फल की प्राप्ति हुई, मध्यकालीन संगीतज्ञों ने राग को इतने प्राणवान, रूपवान एवं अर्थवान स्वरूप में देखा कि श्रोताओं को पूर्ण आनंद एवं सुख की अनुभूति हुई। 16वीं–17वीं शताब्दी में इसका उकर्त्ष इतना बढ़ा की संगीतज्ञों ने जनसामान्य के हृदय में अभूतपूर्व, सुख, सौन्दर्य आदि समाहित कर दिया।

राग अमूर्त है परन्तु ध्यान राग के प्रतीकात्मक शरीर को जन्म देता है। इसमें परम्परा, शैली, तिथिक्रम, सांस्कृति पृष्ठभूमि और संगीत की प्रतीकात्मकता भी परोक्ष रूप में कार्य करती है। इस प्रकार यह निश्चित हुआ है कि मूर्च्छना पद्धति रागों का ढांचा ही प्रस्तुत नहीं करती बल्कि हमारे समक्ष उसका देवतामय रूप भी प्रस्तुत करती है। जाति, वर्ग, गुण, विभाव, आकार, आदि पर उसके प्रभाव भिन्न–भिन्न होते हैं परन्तु ध्यान के महत्व को सभी ने एक मत से स्वीकारा है।

प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थाकारों ने अपना ग्रंथ आरंभ करने के पूर्व ब्रह्मा, सरस्वती तथा महेश्वर की वंदना इसी कारण से की है कि पौराणिक दृष्टि से संगीत का संबंध देवी–देवताओ से अविच्छिन्न रूप से माना गया है। संगीतकारों ने देवी–देवताओं से संबंध स्थापित कर उनकी वंदना से अपने कार्य का शुभारम्भ करके परम सन्तोश की स्थिति को बताया है। उदाहरण पण्डित दामोदर कृत संगीत दर्पण स्वर अध्याय का आरंभ करने पर देवताओं की स्तुति इस प्रकार से की है।

प्रणाम्य शिरसा देवौ पितामहमहेश्वरौ।।
संगीतशास्त्रसंक्षेपः सारतोयं मयोच्यते।।

भावार्थ : ब्रह्मा एवं महादेव की वंदना करके मैं संक्षेप में संगीत शास्त्र का सार करता हूं। इसी प्रकार प्राचीन सभी ग्रन्थाकारों ने भी अपना ग्रन्थ आरंभ करने से पूर्व देवी–देवताओं की वंदना की हैं।

अनेक विचारकों ने संगीत (गीत, वाद्य, और नृत्य) को दैवी उत्पत्ति मानी है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक कल्याणकारी या आनिष्टकारी वस्तृ, जिसका संबंध मानव से है, देवी–देवताओं से जुड़े गई। नाद संगीत मे रूप का माध्यम है उसी से संगीत गातिभयता को प्राप्त कर श्रोता को रसानुभूति की स्थिति में ले जाता है। इस प्रकार एक गायक और वादक की उपासना नाद में आरंभ से क्रियाशील होकर लक्ष्य की प्राप्ति कराती है। अन्य कलाओं में नाद का स्वरूप बदल जाता है जैसे चित्रकला रंग और रेखाएं उसका स्थान ले लेती हैं।

विभिन्न देवी–देवताओं, उनके आसनों, वस्त्रों, शक्तियों, प्रतीकों आदि के विभिन्न गुण, रागों की स्वर लहरी में समाते हैं। रंगों के प्रति उन देवताओं का मोह सगीत की स्तुति का अंग बनता है संगीतज्ञ रंग में होकर एकत्व प्रदान करता है।

वह उसकी स्तुति ध्यान के साथ इस प्रकार कर लेता है कि विभिन्न प्रयुक्त रंग योजनाएं उसके रूप एवं विशेषताओं के साथ आनाययास उसमें झलक पड़ती है।

संगीतज्ञ का साधना पक्ष इतना सुकोमला होता है कि रूप से थोड़ा भी अलग हट कर यदि वह बहक जाय तो देवता की स्तुति का अर्थ ही बदल जाता है। इस प्रकार प्रत्येक देवता के प्रति स्वर संचरण अदि के द्वारा राग की अवधारणाा कर संगीतकार उसका स्वरूप प्रस्तुत करता है। राग की लय का आरोह–अवरोहात्मक रूप नेत्रों के समक्ष तदनुकूल ध्वनि लहरियों की सृष्टि करता है।

आचार्य बृहस्पति के मतानुसार अमूर्त एवं भावात्मक तथ्यों को भी साकार एवं संजीव रूप में प्रस्तुत करने के लिए उन्हें रूपक शैली में समझना पौराणिक परम्परा की विषेशता है। अमूर्त रागों को साकार रूप देकर ध्यानों का निर्माण करना और चित्रकारों के लिए एक ऐसा सुन्दर आधार प्रस्तुत कर देना, जिसमें की मनोरंम चित्रों का निर्माण हो सके और सामान्य व्यक्ति के नेत्रों के समक्ष भी उसका रसात्मक विशिष्ट रूप आ सके, परम्परा की सफलता का प्रमाण है। इसी दृष्टि से गेय स्वर सन्निवेशों अर्थात् रागों का वर्गीकरण राग–रागिनियों के रूप में किया गया है। वर्णमाला मे प्रयुक्त वर्णो को स्थान और प्रयत्न की दृष्टि से अनेक समूहों में जिस प्रकार विभाजित किया गया है मनुष्य के समूह हो जाति, वर्ण, गुण, धर्म, स्वभाव, आकार इत्यादि की दृष्टि से जैसे विभिन्न समूहों में बांटा जा सकता। ठीक उसी प्रकार प्राचीन मनीशियों ने रागों का वर्गीकरण विशिष्ट दृष्टियों से किया है। प्रोफेसर ओ.सी. गांगुली ने इसको पूर्णतया स्वीकार किया है कि समस्त राग–रागिनियों का आधार उसका देवतामय रूप है नाद उसका माग्र प्रसस्त करता है। मूर्च्छना पद्धति रागों का ढ़ांचा प्रस्तुत करती है तो ध्यान पद्धति हमारे समक्ष उनका रसात्मक रूप मूर्त कर देती है इसी विचारधारा से प्रभावित होकर रागों के देवता स्वरूप को एक प्रतिष्ठा प्रदान हेतु राग ध्यान परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ।

अतः साधक के लिए रागों का वर्णन तथा उनका प्रभाव काल, गुण, धर्म, रस, हाव–भावों, रंगरूप का पूर्ण बोध कराने के लिए प्राचीन आचार्यों ने इन रागों के मूर्तिमान आधार का ध्यान बतलाते हुए उनका अभ्यास कराना परमावश्यक समझा था और इसी आधार पर प्राचीनकाल के भारतीय संगीत आचार्यों ने राग ध्यान पद्धति का सफल आविष्कार किया था, यह पद्धति परम्परा हमारे संगीत की अपूर्व निधि है। यह हमारे संगीत की ऐसी विशेषता है जो सम्पूर्ण विश्व के संगीत में कहीं नहीं मिल

पाती। रागध्यान परम्परा, रागध्यान श्लोक व रागध्यान चित्र हमारे संगीत की अमूल्य धरोहर है इन्हें हमें सुरक्षित तथा संवलित करना चाहिए। इनके मूल में हमारी सृदृढ़ आध्यात्मिक चेतना की प्रेरणा छिपी है।

सन्दर्भ

1. डॉ. जगदीष गुप्त, भारतीय कला के पदचिन्ह पृ. 84
2. O.C. Gangoly, Ragas and Raginis, Vol.II 1936, Bombay Page no. 2
3. डॉ. गिरीराजा किशोर अग्रवाल, पृ. 221
4. हिन्दी साहित्य कोष, पृ. 471
5. डॉ. कुमार विमल, सौन्दर्य शास्त्र के तत्व, पृ. 270
6. T.V. Subbarao, Studies in Indian Music, Page no. 212, Asia Publishing House, New Delhi, 1965
7. डॉ. जगदीश गुप्त, भारतीय कला के पद चिन्ह पृ0 84
8. पण्डित दामोदर, संगीत दर्पण, संगीत निकेतन बलकावस्ती, आगरा, 1950
9. पण्डित शारंगदेव, संगत रत्नाकार, दृष्टव्य तिरणीशंकर, चक्रवर्ती का लेख रूपाज आफ रागाज नार्दन इंडिया, पत्रिका ईलाहाबाद, 1982
10. O.C. Gangoly, Ragas and Raginis, Vol.II 1936, Bombay Page no. 106
11. महाराणा कुम्भा, संगीतराज, सम्पादक, प्रेमलता शर्मा, पृ. 412
12. आचार्य मंतगमुनि, बृहद्देषी, पंचम अध्याय,श्ल्लोक 345
13. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, 1966 पृ. 400–413
14. आचार्य बृहस्पति संगीत चिंतामणि, 166, पृ. 403
15. डॉ. सुभद्रा चौधरी, संगीत द्वारा अभिव्यंजना का स्वरूप, दृष्टव्य, निबंध संगीत, पृ.350
16. Waldsehmidt, Miniature of Musical Inspiration, Pt.1.1.1967, Page no.2
17. पण्डित दामोदार, संगीत दर्पण, श्लोक 1 पृ. 5
18. पण्डित विष्णुनारायण भातखण्डे, भातखण्डे संगीतषास्त्र, अनुवादक, श्री विष्वम्भर नाथ मल, 1951।
19. आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, 1966, पृ. 318
20. O.C. Gangoly, Ragas and Raginis, Vol.II 1934, Bombay Page no. 105-106